फ़ैसला

मैत्रेयी पुष्पा

चित्रांकन
मोती कर्ण एवं सत्य नारायण लाल कर्ण



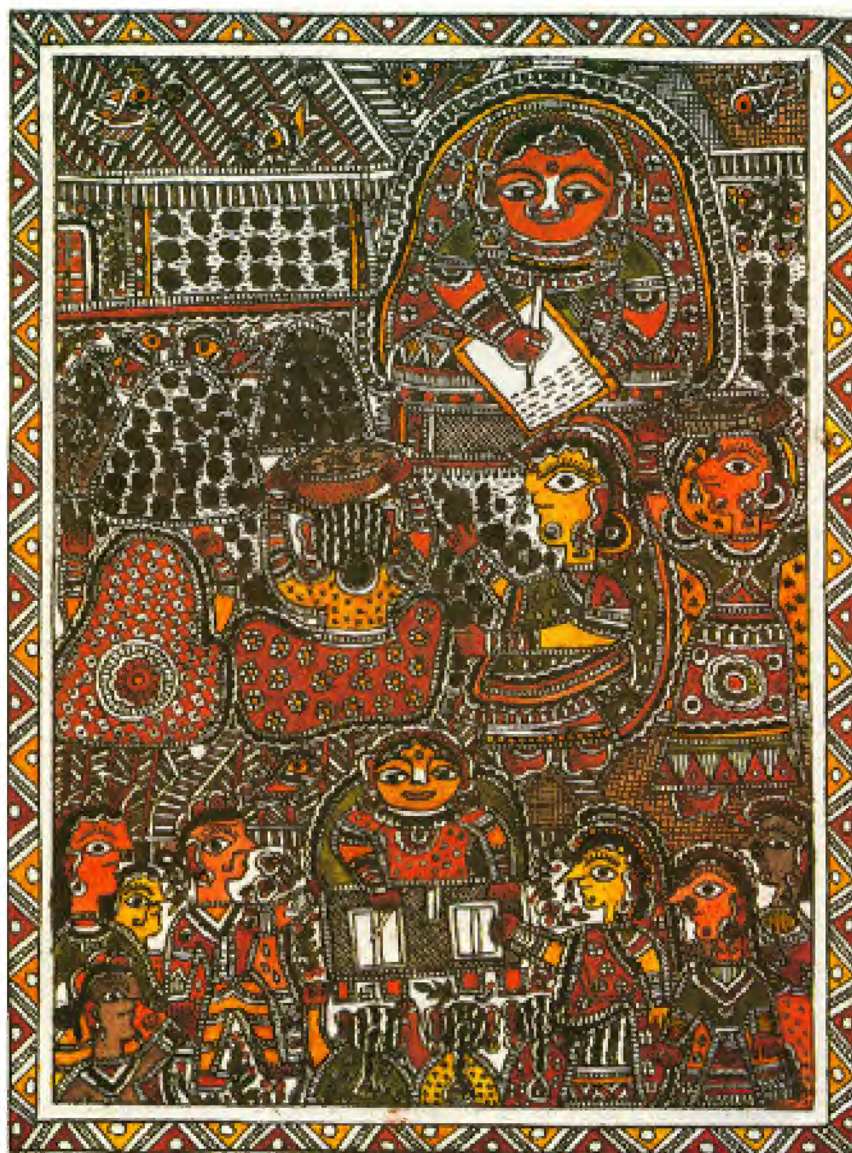


मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका होने के साथ, एक संवेदनशील कवियत्री भी है। इनका जन्म, 1944 को उत्तर प्रदेश के, अलीगढ़ जिले के गाँव में, हुआ था। इनकी रचनाओं में नारी, ग्रामीण परिवेश की पृष्ठभूमि में रहकर भी, अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहती है।

इनके उपन्यासों में, स्मृतिदंश, बेतवा बहती रही, इदन्नमम् तथा कहानी संग्रहों में चिन्हार, ललमनियाँ एवं कविता संग्रह लकीरें, चर्चित हैं। इनकी रचनाओं का, अंग्रेजी के अलावा तामिल, कन्नड़ तथा उर्दू में भी अनुवाद हुआ है। मैत्रेयी जी को हिन्दी अकादमी कृति सम्मान, प्रेमचन्द सम्मान, नंजना गुडू तिरुमालम्बा शश्वती पुरस्कार एवं कथा पुरस्कार से भी, सम्मानित किया गया है। मैत्रेयी जी की लेखनी आज भी, समाज के आडंबरों से जूझती, ग्रामीण नारी पात्रों का सृजन कर रही है।

फैसला भी, ऐसी ही एक नारी की कहानी है।



आदरणीय मास्साब,

सादर प्रणाम,

शायद आपने सुन लिया हो, चुनाव परिणाम घोषित हो गया।

आज भी मैं चकित रह गई, जैसे अपनी जीत के दिन।

कभी सोचा न था कि प्रधान-पद के लिए चुनी जा सकूँगी।

कैसे मिले इतने वोट ?



कारण समझ आया, जब मैंने औरतों को प्रसन्न देखा।

बहनों को धन्यवाद देने, मैं 'पथनवारे' जा पहुँची। वैसे मेरा, वहाँ जाना ठीक नहीं माना जाता। रनवीर तो कह ही चुके थे कि तुम, अब सिर पर तसला धरे नहीं सोहती। आख़िर प्रमुख की पत्नी हो।

जब मैं प्रधान बन गई, तो हर जगह उनका और हमारे गाँव का सम्मान, बढ़ गया।

मैं गाँव की औरतों से, दूरी बनाये रखने के आदेश तले दबने लगी। पर मैं उनके बीच, पहुँच ही जाती।

इसुरिया के बारे में तो आपको, मैंने बताया था।

हम दोनों गाँव में, एक ही दिन ब्याहकर आये थे। शरमाना उसका स्वभाव नहीं।

एक दिन बकरियाँ हाँकते, वह पथनवारे में आ गई। "ओ बसुमतिया ?? ... ? ओ पिरमुखनी ?"

सब हँस पड़ी।



झमक कर बोली, "पिरधान हो गयीं, चलो सुख हो गया, ए ?? सब जनी सुनो ? बरोबरी का जमाना है। अब मरद मारे, तो आ जाना बसुमती के ढ़िंग। करवा देना जेहल। ओ बसुमतिया ? रनवीरा की तरह, अन्याय तो न करेगी ?

"मेरे मरद ने पीटा था तो रनवीर को कागद, मैंने खुद पकड़ाया था। रन्ना ने कागद दाब लिया, मरद फिर चढ़ आया छाती पर।"

इसुरिया ने बाहें उघाड़ दीं। जगह-जगह खंरोचों के निशान थे। सबके मुँह मुरझा गये।

"सुन लो, रनवीर एक दिन चाखी पीसेगा और हमारी बसुमती राज करेगी ...", इसुरिया कहती चली गई।





सुबह सवेरे चूल्हा जलाकर, मैंने तवा रखा ही था कि आवाज़ आई ।

"बसुमती, ओ बसुमतिया...", इसुरिया थी ।

"तेरी सौं बसुमती, पंच तेरी परतिच्छा में चौतरें पर बैठे हैं ।" वह खुशी से खिल रही थी ।

सभा में जाने लगी, तो औरतें घरों से झाँकने लगीं । यह देखने कि मैं, घूँघट डाले हूँ या नहीं ।



माथे तक साड़ी का किनारा । न घूँघट था न खुला ।

चबूतरे के नज़दीक पहुँचते ही, रनवीर लपककर पहुँच गये । कठोर आवाज़ में बोले, "कहाँ ?"

उत्तर इसुरिया ने दिया, "पिरमुख जी हम पंचायत में जा रहे हैं । रास्ता दो ।"

वे मुझ से बोले, "घर चलो तुम ।"

इसुरिया, मुँह बाये देखती रही ।

मैं झुलस गई । सारी उमंग मर गई । विवश इसुरिया भी, मेरे पीछे-पीछे लौट आई ।

ज़रा सोचिये ?

अगर आप प्रधान होतीं और आपके पति, आपको पंचायत में न जाने देते, तो आप क्या करतीं ?

इसुरिया बड़बड़ाती रही, "लो हद्द हो गई, बसुमतिया प्रधान और राज करे रनवीर। प्रधानी से इन्हें अब क्या अपनी पिरमुखी संभालें।"

घुटन भर गई मेरे सीने में।

मास्साब, मेरी आत्मा में किर्चें चुभती रह गई।



रनवीर ने लौटकर, खूब समझाया।

"पंचायती चबूतरे पर बैठती, तुम शोभा देतीं। लाज-लिहाज मत उतारो।"

उस दिन के बाद, पंचायती चबूतरे से बुलावे आते रहे। देहरी उलाँघते ही कोई बरजने लगता। पता नहीं मुझमें ही हिम्मत नहीं थी। उत्तर मन में उबलता। भड़ास होठों तक आती फिर दूध के झाग सा, बैठ जाता विरोध।

ज़रा सोचिये?

बसुमती की तरह, अपने गाँव की पंचायत की प्रधान, कोई भी महिला बन सकती है। क्या आप बनना चाहेंगी?

क्या आपके गाँव की महिलाऐं, पंचायत की बैठक में भाग लेती हैं? आपकी ग्राम पंचायत की कितनी सदस्य, महिलाऐं हैं?





मास्साब, मैंने कई दिनों तक सोचा था, दस्तखत नहीं करूँगी। करने दो मनमानी। रनवीर रजिस्टर लिए, चारपाई पर बैठे थे। कई बार पुकार चुके थे। आखिर उनके झल्ला जाने पर, मैं उनके पास जा खड़ी हुई।



"रनवीर ?"

वह मुँह खोले देखते रह गए।

"मजूर आए थे मेरे पास, उनकी गारा ... पत्थर, ढुलाई की मजूरी, अभी तक ...? गाँव की औरतें ताना देती हैं, कि भली हुई तुम प्रधान, अपने द्वार पर ही पक्का खंरजा करा लिया। अपनी गली ही पत्थरों से जड़ ली, हमसे क्या बैर था बहन, जो कीचड़ में ही छोड़ दिया।"

ज़रा सोचिये ?

ग्राम के निवासी होने के नाते, आपको पंचायत के पंचो या प्रधान से, ग्राम के विकास कार्यों पर, ध्यान आकर्षित करने और प्रगति के बारे में, जानने का अधिकार है।

"कौन कहेगा कि पिरमुख का गाँव है ? गड्ढों में पानी, मच्छर, कूड़ा-करकट कुछ भी तो नहीं हुआ जवाहर रोजगार योजना के पैसे से ...", मैं कहती चली गई ।

"गाँव की औरतें कह रही थीं, या तुम ? ये औरतें कब से बोलने लगी ? हमसे तो कभी किसी ने, कुछ नहीं पूछा और तुमसे इतने सवाल," रनवीर की भाषा, बड़ी तीख़ी थी ।

काँपते हाथों से, मैंने चुपचाप लिख दिया ।

'बसुमती देवी'

दस्तखत !



इस रूपये को जिस दिन लाई थी, उस दिन गाँव के लिये चमचमाते स्कूल, पक्की गलियों, रोज़गार और न जाने क्या-क्या सपने साधे थे ।

मेरी ही छः अक्षर के दस्तखत ने, सपनों के घरोंदे को कण-कण आहत कर डाला ।

ज़रा सोचिये ?

अगर आप गाँव की प्रधान होतीं, तो क्या विकास के पैसे का, दुरुपयोग होने देतीं ? आप बसुमति की जगह होतीं, तो क्या करती ?



कुछ दिन बाद, एक वृद्धा ने किवाड़, आ खटखटाया,

"ओ बेटा ?? बसुमती ?"

मैं पौर में आ गई। बूढ़ी अम्मा पाँवों में गिर पड़ीं, "बेटी लाचारी तो समझ हमारी। जमाई को छुट्टी नहीं मिलेगी, हमारी बेटी हरदेई का फैसला करवा बहू।"

मैं खड़ी-खड़ी सुनती रही।

"बेटी, लड़की का दर्द नहीं देखा जाता। बाप तो राच्छत है, चैन से जीना नहीं बदा हमारे भाग में", कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू की धार बह उठी।



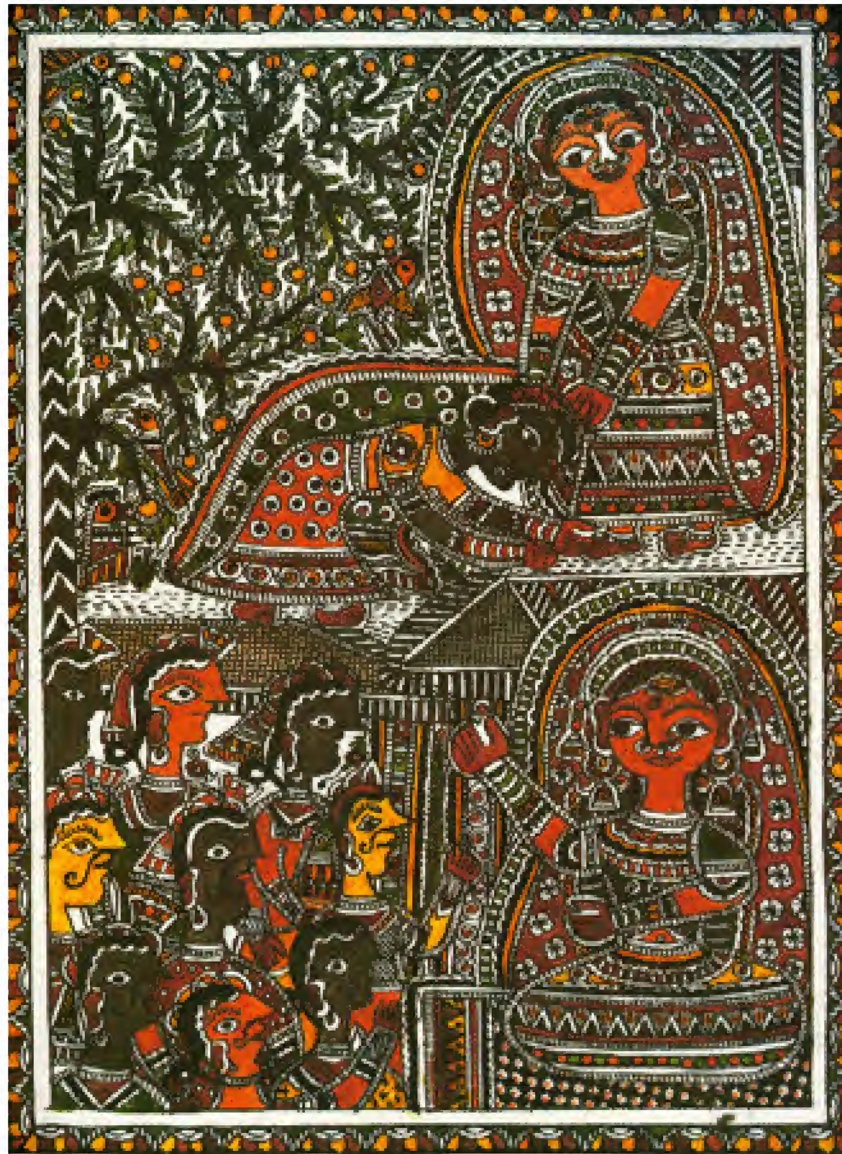
उस समय, न जाने कैसे निर्णय ले डाला कि ठिठके कदम अम्मा के साथ चल पड़े। देवर देववीर रोकता ही रह गया।

फ़ैसला करवा कर आई, तो मन में अपार संतोष था। पंचायत का चबूतरा, मंदिर सा लगा था।

उस रात, रनवीर की बातों का ज़हर, मुझे सिर से पाँव तक नहला गया।

ज़रा सोचिये ?

घर की पाबंदियों के बाद भी, अपना कर्त्तव्य निभाने का साहस, क्या आप कर सकती हैं ?



"कचहरी करने का शौक था, तो वकालत पढ़ ली होती। ये नौटंकी कब बंद करोगी, बताओ।"

डर से, मेरी घिग्गी बँधने लगी। फिर भी न जाने कैसे शब्द होठों से झड़ पड़े।

"हरदेई गिड़गिड़ा रही थी। काश ! तुमने उसका फैसला कर दिया होता। तुम तो सब जानते हो, क्यों नहीं छुड़ाते उसे, बाप के चुंगल से।



वे क्रोध से काँपने लगे।

"कैसा फैसला ? जैसा तुम करके आई हो ?"

"सुन ले, मज़बूरी में खड़ी करनी पड़ी तू। मैं दो-दो पदवी नहीं रख सकता था। सोचा था, पत्नी से भरोसेमंद कौन होगा।"

'भरोसेमंद' शब्द कहते हुए, उनके चेहरे पर जहरीली हँसी उभर आई, जो मेरे कलेजे में धार बनकर उतर गई। लगा सब कुछ छोड़, कहीं चली जाऊँ।

काश, मैं इसुरिया होती। मान-मर्यादा की दीवारों से मुक्त। थोथी परंपराओं से परे।



सुबह उठी, तो करुण स्वर सुनकर, घबरा उठी।

"विरथा है तेरी विद्या ! ख़ाक है तेरी पढ़ाई !" छट पटाती इसुरिया की आवाज थी।

हरदेई ने कुए में कूद कर, जान दे दी थी।

मैं निढ़ाल होकर, आँगन में ही बैठ गई। रात ही रात किसने, पंचों का फ़ैसला बदल डाला। किसने रोका उसे, अपने पति के संग जाने से।

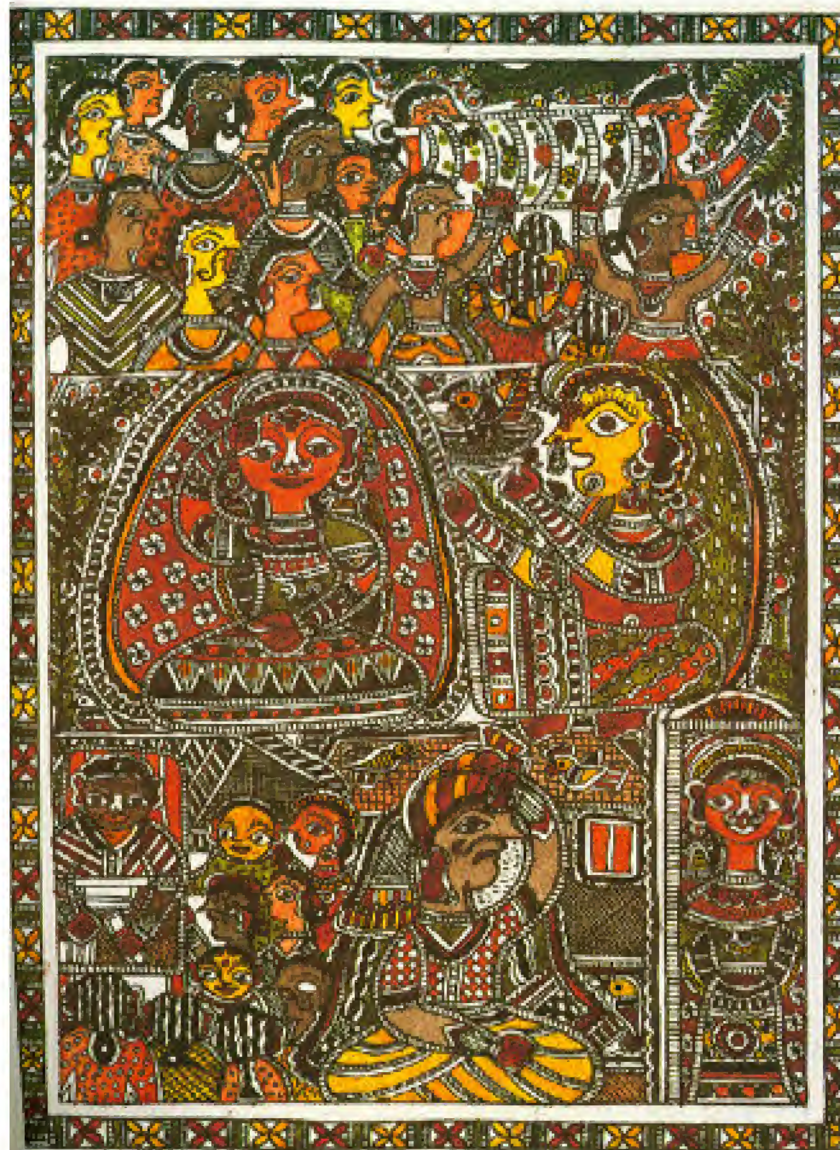


इसुरिया मुझे झकझोर कर कहती रही, "अच्छा होता हम अपना वोट, काठ की लठिया को दे आते। निर्जीव लकड़ी को। उठाए उठती तो, बैरी पर वार तो करती। पर रनवीर की दुल्हन, तुम तो बड़े घर की बहू ही रही। पिरमुख जी की पत्नी।"

लग रहा था जैसे, हरदेई की अर्थी, मेरे ही घर से उठी हो।

ज़रा सोचिये ?

सदियों से पुरुष, नारी को लोक-लाज की दुहाई देकर, दबाते रहे हैं। दुर्भाग्य है कि पुरुष की इस मानसिकता को, बढ़ावा देने में, नारी की सहनशीलता ने भी, योगदान दिया है।



समय बीत गया। प्रमुख का चुनाव, फिर आ गया। रनवीर खड़े हुए। हवा कुछ ऐसी चली कि तीन उम्मीदवार, चुनाव के पहले ही, घुटने टेक गये। एक बचा, वह भी लुहार का लड़का। नादान था शायद।

रनवीर, सुबह ही चले गये। शाम को वोट डालकर, मैं भी लौट आयी।



रनवीर रात को, थके हुए लौटे।

समझने को कुछ शेष नहीं था। मैं पराजय पर, उन्हें सांत्वना देने लगी। पति को दिलासा देने का, हर संभव प्रयास किया था मैंने। तन से, मन से।

तभी बाहर से, देववीर का स्वर कानों में पड़ा। "अगर एक वोट और होता, तो भईया हारते नहीं।"

एक वोट।

विश्वास नहीं कर सकी। मेरे भीतर सब कुछ, डाँवा डोल होने लगा। लेकिन, क्या करती ?

उस दिन, मैं अपने भीतर की इसुरिया को, मार नहीं पाई।

क्षमा करना,

आपकी

बसुमती